DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2017), 10, 59-62

श्रीमद्भगवद्गीता में तनाव प्रबंधन

गायत्री गुर्वेन्द्र एवं अमृत गुर्वेन्द्र

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं आध्यात्मिक जीवन जीने की कला का एक सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है, जो कि मनःसंस्थान के सम्पूर्ण तंत्रों की व्याख्या करती है। वर्तमान समय में गीता की महत्ता अधिक है; क्योंकि आज का मानव तनाव एवं आंतरिक द्वन्द्वों से उद्विग्न एवं अशांत है तथा यह अंतर्द्वन्द्व ही उसके समग्र मनोवैज्ञानिक जीवन की अपूर्णता का कारण है। अन्तःकरण की उत्कृष्टता ही व्यक्तित्व का वास्तविक मापदण्ड है। श्रीमद्भगवद्गीता की समग्र मनःचिकित्सा पद्धति मूलतः त्रिगुणात्मक (सत्व, रज, तम्) है। इस सिद्धान्त के अनुसार शरीर, मन एवं आत्मा तीनों आयाम गुँथे हुए हैं। यदि रोग पनपता है तो वह भी इन तीनों स्तरों को प्रभावित करता है तथा इसका निदान एवं चिकित्सा भी इसी के अनुरूप होती है। गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति की पद्धतियाँ व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) का उपचार करती है। गीता दुविधाग्रस्त चित्त, सन्तापग्रस्त मन तथा खण्ड–खण्ड टुटे हुए संकल्प को अखण्ड करने के लिए समाधान बताती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में गीता में अन्तर्निहित यौगिक एवं मनोवैज्ञानिक गूढ़ रहस्यों व संकेतों का अनावरण कर तनाव प्रबंधन की तकनीको को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, यज्ञीय कर्म, स्वधर्म, युक्ताहार–विहार, तनाव एवं प्रबंधन।

अपनी भौतिक प्रगति के चरम पर आज का मनुष्य एक विचित्र सी विडम्बना भरी स्थिति में उलझा हुआ है। एक ओर जहाँ भौतिक प्रगति से उत्पन्न सुख साधनों का अम्बार है तो दूसरी ओर इसके सही उपयोग एवं उपभोग न कर पाने की जीवन दृष्टि के अभाव से उपजा संकट। भौतिक विकास की एकाकी एवं अंधीदौड़ में उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं का आपसी सामंजस्य–संतुलन टूट बिखर गया है। बढ़ी–चढ़ी महत्त्वाकाक्षाएँ, गलाकाट प्रतियोगिता, सुख भोग की तृष्णा–वासना, अस्त–व्यस्त जीवनशैली, जीवन के किसी सार्थक एवं उच्चतर ध्येय का अभाव, सब मिलाकर तन–मन की बाह्य–आन्तरिक स्थिति को लचर बनाये हुए हैं। जीवन की बढ़ती जटिलता एवं परिस्थितियों का दबाव जीवन में तनाव की विषम समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रहा है।

तनाव का अस्तित्व मात्र इसी युग का है, ऐसी बात भी नहीं है। यह तो मनुष्य जीवन का चिरअतीत सहचर रहा है और मूलरूप में मनुष्य के विकास एवं प्रगति में एक सहायक एवं उत्प्रेरक तत्त्व भी रहा है। तनाव की स्थिति में शरीर की एड्रीनल ग्रन्थि से एड्रीनेलिन नामक हार्मोन स्रावित होता है, जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है और शरीर को परिस्थितियों की चुनौतियों के दबाव को सहने में सक्षम बनाता है (Hambley,1980, p.10)।

विश्वस्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार दो–तिहाई मानव जाति किसी–न–किसी तनावजनित रोग से पीड़ित हैं। पश्चिम के विकसित देशों में स्थिति अधिक गम्भीर है। इसकी व्यापकता एवं गम्भीरता को देखते हुए ही इसे युग की महाव्याधि की संज्ञा दी गई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार तनाव का संक्रमण अमेरिका में एक वायरस की तरह हो रहा है (Seward, 2002, p.13)। नेशनल हेल्थ सर्वे (2012) की रिपार्ट अनुसार दुनियाँ के 75 प्रतिशत व्यक्ति हर दो हफ्ते में कम–से–कम एक बार तनाव के दौर से गुजरते हैं। इनमें से आधे से अधिक का तनाव बहुत उच्च स्तर का होता है। वर्ष 2010 तक तनाव के रोगियों की संख्या 118.2 मिलियन तक पहुँच गयी तब अमेरिकी स्वास्थ्य विभाग को अपना सबसे बड़ा लक्ष्य 'तनाव नियंत्रण' निर्धारित करना पड़ा। तनाव और अन्य रोगों के बीच अभी सीधा सम्बन्ध तो नहीं खोजा जा सका है लेकिन वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि तनाव रोगों की तीव्रता को जरूर बढ़ा देता है।

वर्तमान मानवीय अस्तित्त्व की समस्याओं के समाधान के लिये गीता एक कालजयी ग्रंथ है, जो कि जीवन की पूर्ण सक्रियता के बीच महाभारत की युद्ध भूमि में श्रीकृष्ण के मुख से गीता के रूप में मुखरित हुआ है। भगवद्गीता का प्रारंभ अर्जुन के मोह के कारण उत्पन्न अन्तःद्वंद्व व तनावग्रस्त मनःस्थिति से होता है। जिसका समाधान भगवान कृष्ण गीता के माध्यम से करते है।

तनाव

तनाव एक ऐसा तथ्य या घटना है जो व्यक्ति की क्षमता से अधिक दबाव या खींचाव के कारण होता है। तनाव सिद्धान्त के जनक हेन्स सिलये के अनुसार शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार की गयी अविशिष्ट अनुक्रिया को ही तनाव कहते है (Selye,1979, p.40)। हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के दैहिक माँगों (बीमारी की

अवस्थाएँ, व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाला के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होता है (Morgan, King, Weisz & Schopler, 1986, p. 321)। बेरोन के अनुसार तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता या विघटित करने की धमकी देता है (Baron, 1992, p.443)। अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी अवस्था के प्रति दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया को तनाव कहा है जो व्यक्ति को चुनौती या धमकी देता है तथा जिसमें अनुकूलन या समायोजन के कुछ प्रारुप की जरूरत होती है (Wood, Wood & Byod, 1999, p.469)।

यह तो स्पष्ट है कि तनाव परिस्थितियों की दबावपूर्ण माँग और इसको पूरा करने में मन की सक्षमता के बीच असंतुलन से पैदा होता है, किन्तु तनाव प्रबंधन तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि तनाव के कारण एवं मूल स्रोत से परिचय न हो। इसके अभाव में तनाव का उपचार नहीं हो सकता; क्योंकि तनाव स्वयं में कोई रोग नहीं है बल्कि एक गड़बड़ी का संकेत करता है, जिसका कारण मनःस्थिति में विद्यमान रहता है। इन स्रोतों के स्तर पर हस्तक्षेप करके ही तनाव का सही–सही उपचार सम्भव होता है (Uma, 2011)।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ब्राउन ने एक मॉडल दिया जिसमें तनाव के स्रोतों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है। (1) जीवन के बड़े परिवर्तन (जैसे– शादी, तलाक, स्कूल की शुरूआत और रिटायरमेंट आदि)। (2) अप्रत्याशित जीवन घटनाएँ (जैसे– अप्रत्याशित वियोग, नौकरी का अचानक छुट जाना, बड़ी दुर्घटना, घातक रोग का पता चलना आदि)। (3) क्रमिक रूप से घटित होती समस्या (जैसे– दैनिक भाग दौड़, नौकरी और घर के तनाव, स्कूल तनाव और प्रतियोगिता)। (4) व्यक्तित्व संबंधी समस्या (जैसे अल्प सम्वाद, असुरक्षा, आत्मविश्वास का अभाव, दुर्बल निर्णय क्षमता और असफलता का भय)। (5) विचार भाव के द्वन्द्व (जैसे क्रान्तियाँ, टूटे घर, नैतिक दुविधाएँ, धोखा या असफलता और अभिभावक दबाव) (Brown, 1984, p.72)।

गीता में तनाव प्रबंधन के उपाय

तनाव के उपचार के प्रयास में थका–हारा आधुनिक विज्ञान अध्यात्म की पुरातन विद्या में सार्थक सूत्र–संकेतों एवं तकनीकों की तलाश में है। प्राचीन विद्याओं में सम्भवतः योग ही मन को शांति और विश्राम देने वाली सबसे पुरातन और सबसे प्रभावशाली विधि है। तनाव का प्रबन्धन कई रूपों में हो सकता है, परन्तु इसका सबसे सार्थक, समग्र एवं सटीक निदान योग के क्षेत्र में मिलता है। योग का फलक बड़ा ही व्यापक, विस्तृत एवं निरापद है। योग के इस व्यापक क्षेत्र में ऐसे असंख्य सूत्र भरे पड़े हैं, जिनका उपयोग एवं अभ्यास कर न केवल तनाव से मुक्त हुआ जा सकता है, वरन् शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को भी प्राप्त किया जा सकता है (Udupa,1996, p.132)।

तनाव के उपचार एवं प्रबन्धन से पूर्व इसके कारणों का पता लगाना आवश्यक है, अन्यथा जड़ को जाने बिना किये गये प्रयास मात्र पत्तों को सींचने जैसी अधूरी प्रक्रिया ही सिद्ध होगी और यही आज चल रहे तनाव प्रबन्धन के प्रयासों की विडम्बनापूर्ण स्थिति है। मात्र दवा खाने से, वातावरण को बदलने से, व्यवहार परिवर्तन से या छुट–पुट मनोवैज्ञानिक तकनीकों से तनाव का समूल उपचार सम्भव नहीं है। आज की भौतिकवादी एवं भोगप्रधान जीवन पद्धति को बदले बिना ही समाधान के प्रयास अधूरे माने जायेंगे; क्योंकि भोगवादी मूल्यों पर आधारित आज की भौतिकवादी संस्कृति ही बढ़ते तनाव का प्रमुख कारण है। इसी के कारण असंयमित आचरण जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गया है। प्रगति की अंधी दौड़ में मनुष्य मानवीय मर्यादा, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को तिलांजलि दे चुका है। परिणामस्वरूप अस्त–व्यस्त जीवनचर्या, अमर्यादित व्यवहार, उच्छृंखल आचरण, भ्रष्ट चिन्तन एवं विकृत जीवनशैली सब मिलकर जीवन को नकारात्मक एवं विध्वंसात्मक आवेग–आवेशों से आक्रान्त किये हुए हैं। स्पष्टतया तनाव की महाव्याधि व्यक्ति के तन–मन एवं समूचे जीवन पर कहर ढा रही है (पण्ड्या, 2003)।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण कुछ ऐसे ही मनोवैज्ञानिक सूत्रों का प्रतिपादन करते हैं, जिन्हें अपना कर तनाव से छुटकारा पाया जा सकता है। जो कि निम्नांकित है–

आसनाभ्यास– श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आसन से शारीरिक व मानसिक स्थिरता, आरोग्यता व हल्कापन प्राप्त होता है (गीता– 14/8)। गीताकार ने इसे *'समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः'* अर्थात् काय, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके स्थिर होने को कहा है तथा इससे चित्त, इन्द्रिय, मन एवं अन्तःकरण की शुद्धता की बात कही है (गीता, 6/13)। जिससे साधक सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख जैसे द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है (पातंजल योग सूत्र, 2/48)।

प्राणायाम– प्राणायाम प्राण शक्ति के नियंत्रण, विस्तार एवं चित्तशुद्धि की विधा है। प्राण व मन ये दोनों आपस में एक–दूसरे से गुंथे हुए हैं। जब विचारों की गुणवत्ता में परिवर्तन आता है, तो श्वास भी परिवर्तित हो जाती है। योगेश्वर श्रीकृष्ण व्यवहार के परिमार्जन से संस्कारों के परिमार्जन की प्रक्रिया, अपनी वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अनुरूप एक नयी तकनीक का प्रस्तुतीकरण करते हुए कहते हैं– *'प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ'* (गीता,

5/27) अर्थात् नासिका में विचरण करने वाले प्राण और अपान वायु को सम करने से, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को निरूद्ध कर, समस्त इच्छा, भय और क्रोध से सदा के लिए मुक्त हुआ जा सकता है।

नासिकाग्र ध्यान– यह ध्यान की पूर्वावस्था अर्थात् धारणा की स्थिति है, जिससे तमोगुण का नाश होता है। इसी तत्त्व को *'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्'* कहा है अर्थात् काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर अन्य दिशाओं को न देखते हुए ध्यान करने को कहा है (गीता, 6/13)। इसके द्वारा शरीर और मन की अस्थिरता नष्ट होती है और व्यक्ति तनावमुक्त हो जाता है। आसन, प्राणायाम एवं ध्यान क्रमशः शारीरिक, प्राणिक एवं मानसिक स्तर पर सक्रिय होकर क्रमशः विभिन्न स्तरों पर तनाव की समस्या का निराकरण करते हैं। ये यौगिक क्रियाएँ न केवल तनाव से उत्पन्न रोगों पर अंकुश लगाती है बल्कि मनोकायिक स्तर पर शरीर की प्रतिरोधी क्षमता भी बढ़ाती हैं (Udupa,1996, p.140)।

स्वधर्म की खोज– 'स्वधर्म' याने कर्म से घिरे होने पर भी अपने स्वयं के कर्त्तव्य को पहचानना। अपने अस्तित्व की गहराइयों में झांकना, स्वयं की सम्भावनाओं पर विचार करना (गीता, 3/35)। यदि जीवन का स्वधर्म (कर्त्तव्य) खो गया तो जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीयता लेकर आया है, अनूठी प्रकृति लेकर आया है, जिसका अपना स्वर है, अपना संगीत है, जिसकी अपनी सुगंध है, अपना जीने का ढंग है, उसी को खोजना व विकसित करना होगा। स्वधर्म के पालन से द्वंद्वों का शमन होता है जिसके परिणाम स्वरूप तनाव आदि समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है।

अभ्यास एवं वैराग्य– महर्षि पतंजलि पंचक्लेशों को बन्धन का प्रमुख कारण मानते हैं जो कि व्यक्तित्व को विघटन की ओर ले जाता है (पातंजल योगसूत्र, 2/3)। इसके उपचार के लिए गीताकार ने मन की चंचलता और कठिनता को वश में करने के लिए *'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'* अर्थात् अभ्यास और वैराग्य की युक्ति बतायी है (गीता, 6/35)। सांसारिक विषय वस्तुओं के प्रति वैराग्य भाव–धारण करते हुए इनके प्रति तटस्थ दृष्टि अपनाने की बात कहते हैं। योग साधना द्वारा जब इस भाव का विकास होता है, तो मन की निम्न प्रकृति एवं क्रिया–पद्धति के प्रति एक स्पष्ट दृष्टि का उद्भव होने लगता है। इस भावभूमि में प्रतिष्ठित व्यक्ति हर तरह की बाधाओं एवं झंझावातों के बीच अविचलित रहता है। वह दृष्टा बनकर मानसिक क्रियाओं एवं हलचलों का अध्ययन करता है, इन्हें दिशा देता है व रूपान्तरित करता है।

समभाव– सकारात्मक चिन्तन की विशिष्टता के द्वारा सुख–दुःख का आध्यात्मिक रूपान्तरण किया जा सकना सम्भव है। योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तू इस धर्म युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज भोगेगा। इसलिए जय–पराजय, लाभ–हानि और सुख–दुःख को समान समझकर, युद्ध के लिए तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा (गीता, 2/37–38)। यदि आध्यात्मिक जीवन दृष्टि अपनाई जाये अर्थात समभाव रखा जाए तो जीवन की प्रत्येक परिस्थिति तनाव का कारण नहीं बल्कि एक सुअवसर बन सकती हैं।

यथायोग्य आहार–विहार – *'आह्यते इति आहारः'* अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है वह आहार है। आहार का हमारे तीनों शरीरों से गहरा सम्बन्ध है। कहा गया है, जैसा खाये अन्न, वैसा बने तन और मन। विहार अर्थात जीवन चर्या से है। गीताकार ने स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन के लिए युक्ताहार–विहार की महिमा का वर्णन किया है। अर्थात् यथायोग्य आहार–विहार करने से, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने से और यथायोग्य सोने तथा जागने से समस्त दुःखों का नाश हो जाता है (गीता, 6/17)। आज व्यक्ति की आहार और जीवन चर्या दोनों ही अस्त–व्यस्त हो गयी है और यही तनाव का मुख्य कारण है। यदि जीवन चर्या को यथायोग्य बना लिया जाये तो तनाव की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

यज्ञमय कर्म– कर्म का सामान्य अर्थ है जिसे करें तो हमें कुछ प्राप्ति हो, किन्तु गीताकार ने इस तत्व को *'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः'* कहा है (गीता, 8/3)। अर्थात् भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है वही कर्म है अर्थात् यज्ञमय कर्म अर्थात निष्काम कर्म। यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त सारे कर्म को बन्धन का कारण बताया है (गीता, 3/9)। आस्कर ब्राउन 'इण्टीग्रेशन ऑफ माइंड' में कहते हैं किसी भी काम में उच्च और व्यापक भावनाओं तथा पूर्ण मनोयोग घोल देने पर मन के सारे द्वन्द्व समाप्त होते हैं और वह शांत होता चला जाता है। इस प्रक्रिया में मन विक्षिप्तता से उठकर एकाग्र होता है और एकाग्रता से बढ़कर निरूद्ध होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति काम करते हुए उसी तरह शांत और स्थिर बना रहता है, जैसे तेजी से घूमता हुआ लट्टू। गीताकार के शब्दों में जिस

प्रकार सारी नदियों में जल को अपने अंदर लेता हुआ समुद्र चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार ऐसा पुरूष कर्तव्य कर्मों को करता हुआ परम शांति को प्राप्त होता है (गीता, 2/70)।

निष्कर्ष

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत है इसके अन्तर्गत मनुष्य शरीर, मन एवं आत्मा इन त्रिविध आयामों से बंधा हुआ अखण्ड एवं समग्र स्वरूप है। यौगिक दृष्टिकोण में समस्त द्वन्द्वों एवं ग्रंथियों का मूल कारण अज्ञान जनित अहंकार है। भगवद्गीता की उच्च यौगिक प्रक्रियाएँ समस्त मानसिक समस्याओं के यथार्थ उपचार में समर्थ हैं। इनमें अचेतन ग्रंथियों का उदात्तीकरण व शमन होता है। मनवीय व्यक्तित्व के विशेषज्ञ, मनीषी, चिंतक सभी आज के तनावजन्य समस्याओं का एक ही कारण मानते हैं कि मानव अपनी प्राचीन यौगिक जीवनशैली को छोड़कर आधुनिक व भौतिकवादी जीवनशैली की चकाचौंध में अविवेक का अवलम्बन लेने के कारण अनेकानक समस्याओं से ग्रसित हो रहा है। इस संदर्भ में हुए विविध शोध प्रयास इसके सकारात्मक प्रभावों को पुष्ट करते हैं (Udupa,1996, p.141)। इस प्रकार गीता का योग तनाव प्रबन्धन की समग्र उपचार पद्धति है; क्योंकि इस उपचार पद्धति में अन्य प्रबन्धन की भाँति अपूर्णता का अभाव है। इसमें तनाव की समस्त समस्याओं का निराकरण एवं निदान मिलता है।

गायत्री गुर्वेन्द्र, पी–एच0डी0., प्रवक्ता; **अमृत गुर्वेन्द्र**, पी–एच0डी0, सहप्राध्यापक, योग एवं स्वास्थ्य विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज हरिद्वार, भारत।

संदर्भ सूची

श्रीमद्भगवद्गीता– 2/37, 38, 70

श्रीमद्भगवद्गीता– 3/9, 35

श्रीमद्भगवद्गीता– 5/27

श्रीमद्भगवद्गीता– 6/13, 17, 35

श्रीमद्भगवद्गीता– 8/3

श्रीमद्भगवद्गीता– 14/8

पातंजल योग सूत्र– 2/3, 48

पण्ड्या, प्रणव (जनवरी, 2003). इस युग की महाव्याधि : मानसिक तनाव। *अखण्ड ज्योति,* 61(1),14.

Brown, B. (1984). *New Nations in Stress and the Nature of Well Being*. New York: John Wiley.

Hamley, D. K. (1980). *Overcoming Tension.* New York : Harper & Row.

Udupa, K. N. (1996). *Stress & its Management by Yoga*. Delhi : Motilal Banarasidas Publication.

Selye, H. (1979). *The Stress of life*. New York: Harper & Row.

Seward, B. L. (2002). *Managing Stress*. London : Hodder & Stoughton.

Uma, D. T. (2011). A Study on Stress Management and Coping Strategies With Reference to IT Companies. *Journal of Information Technology and Economic Development 2*(2), 30-48.

Baron, R. A. (1992). *Pyshcology*. Botson: Allyn and Bacon.

Wood, S. E., Wood, G. & Boyd, D. (1999). *The World of Psychology.* New York: Printice Hall.

Morgan, C. T., King, R. A., Weisz, J. R. & Schopler, J. (1986). *Introduction to Psychology.* New York: McGraw-Hill.